FOR PRIVATE CIRCULATION ONLY

PRINTED MATTER

To _____

_____

_____

From :

SANTASAROVAR,
Mount Abu (Raj)

Rajasthan Printers, Jodhpur.

संवित्

स्फुलिंग

संवित् साधनायन का विमर्श-पत्र

7

[illegible]
[illegible], आबू पर्वत

पावस करण
विक्रम २०३३
वर्ष २, अङ्क १

श्री गुरु ध्यान

द्विदलकमलमध्ये बद्धसंवित्सुमुद्रं
धृतशिवमयगात्र साधकानुग्रहार्थम् ।
श्रुतिशिरसिविभान्तं बोधमार्तण्डमूर्ति
शमिततिमिरशोकं श्रीगुरूं भावयामि ।।

भ्रूमध्य द्विदल कमल रूप आज्ञा चक्र में श्रीगुरूमूर्त्ति का मैं ध्यान करता हूँ जो साधकों के अनुग्रहार्थ ही शिवमय शरीर धारण किये हुये हैं और दक्षिण-हस्त से चिन्मुद्रा बाँधे हुये हैं उदयाचल पर उदित सूर्य की भाँति यह ज्ञानमूर्ति वेद के शिखर पर (उपनिषदों में) देदीप्यमान है, जिनकी प्रभा से मोहान्धकार एवं शोकमय शीत दूर हो रहे हैं ।

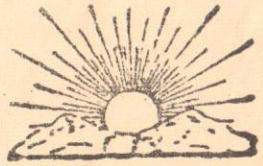

संवित् स्फुलिंग की प्रथम जयन्ती पर
समस्त साधकों का
हार्दिक अभिनन्दन ।

पादुका

(प्रार्थना)

आप के श्री चरण—
सर्वोपरि, सकल कल्याण स्रोत—
मेरा चिर अवलम्बन !
अकंपित अविरत निज गति में
कण कण को, हर स्पन्दित मन को
छूकर करते दिव्य शक्ति दान ।

★

वे पद पहुँचेंगे मुझतक, न कि मैं उन तक—
मन्द व मूढ जो मैं हूं ।
मात्र प्रार्थना है यह मेरी—
प्रणत भद्र मन पीठिका पर
चिति-चरण-चिह्न अंकित कर जाएं ।।

सदाचारानुसंधानम्

अतीतानागतं किंचन्, न स्मरामि न चिन्तये ।
राग द्वेष विना प्राप्तं, भुंजाम्यत्र शुभाशुभम् ।।६।।

[illegible] का बिल्कुल स्मरण करता हूं और न भविष्य की चिन्ता । [illegible] शुभ में द्वेष के बिना जो भी प्राप्त होता है उसी का उपभोग [illegible]

★

[illegible] के सारे धर्म कृत्य समाप्त हुये । उच्च सूर्य की वेला में दैनिक [illegible] का एक प्रमुख अंग उपस्थित होता है—भोजन । यज्ञ से यज्ञशिष्टामृत, [illegible] खोह—इस शास्त्रीय क्रम के प्रतीकत्व का आशय यह है कि [illegible] के परिणाम से आत्मरक्षा होनी चाहिये । शमदमादि साधन सम्पन्न [illegible] का यह परिणाम है । ज्ञान ही यह रक्षा है । इन दानों के बोच की कड़ी [illegible]

★

[illegible] में कहा गया था कि ज्ञान-यज्ञ में एक मात्र आहुति चित्त की [illegible] । आत्मानल सभी को आत्मसात कर लेती है, कुछ भी शेष नहीं [illegible] में अंचित स्वानुभूति में केवल आत्मदेव ही विराजते हैं । [illegible] की स्थिति है, ब्रह्मनिष्ठा की ओर एक चरण है । आत्मनिष्ठा [illegible] कल्पना की स्थिति नहीं । न वह मानसिक पक्षाघात की [illegible] सुख-दुःख शीत-उष्ण तथा क्षुत्पिपासा का भान नहीं होता । [illegible] जगत के साथ व्यवहार करने से आनेवाले परिणामों को कैसे [illegible] वह न तो कल्पना जगत् की सृष्टि कर उसमें विचरण करता है [illegible] जगत् से दूर ही भागता है । आत्मवेत्ता केवल वर्तमान में पूर्ण [illegible] है । अतः परम व्यावहारिक है । उसकी स्थिति होती है—न विगत [illegible] न भविष्य की चिन्ता । न शुभ में राग और न अशुभ में द्वेष । यह [illegible] किसी भी कार्य में पूर्वापर का चिन्तन अनिवार्य है कि नहीं ?

★

"आपत्ति वन का निर्मूलन परशु परम शान्ति को आधार शिला, शम रूपी वृक्षका पुष्प गुच्छा—निराशा का अवलम्बन करो"—योग वाशिष्ठ इस उपदेश में उपर्युक्त साधना का रहस्य है।

कर्म का फल शुभ और अशुभ दो प्रकार का ही है। सब को यही भोग है। जब इस से अतिरिक्त कोई भी अन्न किसी भी जीव के लिये कहीं भी उपलब्ध नहीं है, तो "हमें क्या मिलेगा ?" इसकी चिन्ता सर्वथा निरर्थक हो जाती है। अन्न के आवरणों में या अलंकारों में आग्रह बालक मन ही रख सकता है। परिपक्व साधक इसको त्याग देता है। इन भोग आवेष्टनों को लेकर ही राग द्वेष-मन की पसन्द, नापसन्द—आदि का प्रसंग उठता है। इन्हीं को लेकर आशायें बरसाती नदी की तरह उमड़ती हैं। साधक पूर्व कर्म प्राप्त भोग प्रसाद को स्वीकारते हुये आशा को तृष्णावर्तपूर्ण बाढ़ को बढ़ने नहीं देता। फलस्वरूप उसको प्रत्येक उपलब्धि में सन्तोष की अनुभूति होती रहती है। यही "भोग" से प्राप्त तृप्ति है।

★

सन्तोषामृत वर्तमान की थाली में परोसा जाता है। भूत-भविष्य चिन्तन आते ही वह सार लुढ़क जायगा। इसका अभ्यास साधक इन पहलुओं को लेकर करें :

(१) मात्र उन अनुभूत वासनाओं और आगामी विचारों को अपनाना है, जो वर्तमान व्यवहार के अन्तःपाती हैं। वर्तमान स्वयं एक विकास-तत्व है, अतः इसमें तन्मय होना स्तब्धता नहीं ला पाता है। "वर्तमान निमेषं तु हसन्नेव तिवर्तन—हंसते हुये वह वर्तमान् निमेष का अतिवर्तन करता है" कहने का यही तात्पर्य है।

(२) वर्तमान से असंबद्ध चिन्तन प्रवाह को बन्द कर देना—इस संकल्प से।

(३) वर्तमान में भी परिणाम की रूपरेखा, सौष्ठव आदि की चिन्ताओं को छोड़ देना—इस विचार से कि सबका एक ही परिणाम है।

(४) अप्राप्य एवं अनावश्यक परिणामों के विषय में ही चिन्ता की वृद्धि संभव है—जैसे लोक प्रियता, प्रतिष्ठा, अन्यों को वश में करना आदि। वैराग्य के द्वारा इन अस्वाभाविक कामनाओं का त्याग।

(५) प्रत्येक क्रिया में शम व सन्तोष का समन्वय करते जाना।

★ ★ ★

इति शुश्रुम धीराणाम्

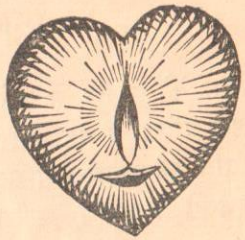

"... शान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वात्मन्येवात्मानं पश्यति ..."

सच्चिदानन्द आत्म स्वरूप का विज्ञानार्थी अपने आप में उस स्वरूप का दर्शन करता है। दर्शन के लिये शान्ति, दान्ति, उपरति, तितिक्षा नामक षड्गुण सम्पत्ति को दक्षिणा रूप से वह समर्पित करता है। इस धन का अर्जन ही अध्यात्म जीवन का आरम्भ व्यवसाय है।

यह दर्शन कैसे सम्भव है ? श्रद्धा चक्षु से। अतः "पश्यति" से श्रद्धा विधि का ग्रहण हो गया। इस प्रकार यह यजुर्वेद मन्त्र षट् सम्पत्ति को आधिकार कोटि में प्रमाणित करता है।

★

षट् सम्पत्ति का ही निर्देश क्यों ? एक कारण यह है कि इनके द्वारा साधक के कार्य-करण संघात में ज्ञानोपयोगी पात्रता का आपादन है। शरीर इन्द्रिय में संतप्त हो परिपक्व बनता है। जितना ही आराम इसको दें उतना ही यह अनुपयोगी हो जाएगा। इन्द्रियों को दम एवं मन को शम नामके निग्रह से संस्कृत किया जाता है। मन के अतिरिक्त अन्तःकरण के तीन रूप और हैं। उनमें से बुद्धि श्रद्धा से पूत होती है। चित्त वासना जाल के समाधान के द्वारा सुलझा हुआ सुव्यवस्थित व शुद्ध सत्त्वात्मक बन जाता है। अहंकार के विसर्जन में उपरति ही समर्थ होती है। इसी को संन्यास भी कहा है।

★

आत्मनि आत्मानं पश्यति–यह समाधि की अवस्था है, जहाँ आपने अन्दर ही समस्त दृश्य विलय के द्वारा निषेधावधि स्वरूप में आत्मा का ग्रहण होता है।

सर्वात्मानं पश्यति – यह सहज अवस्था है। इसमें समाधि का भी निषेध हो जाता है।

★ ★ ★

शिव संकल्पमस्तु

अहं को इदं तक ले जाने या इदं को अहं तक लाने के लिये मन एक सेतु है। इस प्रक्रिया में अहं द्वारा इदं को प्रकाशित करना सार्थक प्रवृत्ति है। परन्तु, यदि इस प्रकाशन में अहं इद में ही डूब जाता हो तो मन अनर्थ कर बैठता है, अशिव हो जाता है। इसे शिवमय कैसे करें ?

★

कामना वात से मानस तरंगित होता है। जब वह तरंग बुद्धि से परिमार्जित एक निश्चित रूप को धारण करके क्रियोन्मुखी हो जाती है तो उसे संकल्प कहते हैं। संकल्प के पीछे राजस बल रहेगा तो विषय के साथ तन्मयता होकर जडतापत्ति होगी। इन दोनों से विलक्षण शुद्ध सत्त्व की प्रेरणा रहे तो प्रत्येक संकल्प शिव की क्रिया शक्ति का प्रदर्शन करके अन्त में शिव में ही लीन हो जाएगा। अतः मन सेतु के ऊपर से कंकरों को उखाड़ कर शुभ स्फटिक शिलाओं को बिछाना है। मन दर्पण बन जाएगा तो अहं के आभास को साक्षात् ग्रहण कर लेगा और आगे जाकर शुद्ध अहं में भी गति कर सकेगा। यही प्रार्थना है 'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु"। see · p · 76 onwards Portion

★ ★ ★

मौन

[साधकों द्वारा 'विमर्श' में प्रस्तुत कतिपय लक्षण]

१. वाणी को मन में प्रतिष्ठा
२. वृत्ति उपशम
३. शब्द के परे
४. बहिर्मुखता का त्याग
५. अहंता का अनुदय
६. स्वानुभूति की भित्ति

दर्पण बिम्ब का सत्कार करता है, संग्रह नहीं।
तुम बटोर क्या रहे हो ?

विमोचन

(गीत)

वासना कादम्बिनी की सतत तृष्णा धार से–
पुष्ट वन को अवन कर, निर्वेद परशुप्रहार से।
भेद धी–प्रतिफलन–चुम्बित दृष्टि विष संचार से–
दुष्ट मन को अमन कर, गुरु वचन अमृत सार से ।।
वचन अमृत सार से,
गुरु श्रवण मनन प्रचार से ।।

वेद–ईश्वर–तीर्थ श्री गुरुचरण में रहते सदा,
वचन–मन–आचरण में गुरु सरल–सम–निर्मल सदा।
गुरुदृगन्त–निपात–निःसृत दृश्य–दृक्–समरस बहा,
धुलगया जिसमें "अहं", अवशिष्ट संविद्घन रहा ।।
शिष्ट संविद्घन रहा,
आश्लिष्ट सच्चित् तन रहा ।।

★ ★ ★

वृद्ध शिष्य मरण शय्यापर था। पार्श्वस्थ गुरु स्निग्ध स्वर में बोले : मैं तुम्हारे लिये कुछ करूँ ?

शिष्य : असहाय और अकेला ही मैं आया था; अब वैसे ही मुझे जाना पड़ेगा। अन्य कोई भी क्या कर सकते हैं ?

गुरु : यदि तुम्हें आने जाने की प्रतीति अभी भी अपने में है तो नितरां किसी सहायता की जरूरत है।

शिष्य ने गुरु की ओर देखा, समझ गया, मुक्त हुआ।

बरसाती रात

(उधृत)

झर गये खद्योत सारे,
तिमिर-वात्याचक्र में सब पिस गये अनमोल तारे;
बुझ गई पवि के हृदय में काँपकर विद्युत-शिखा रे !
साथ तेरा चाहती एकाकिनी बरसात !
पूछता क्यों शेष कितनी रात ?

★ ★ ★

जब तक ईश्वर का सत्य अज्ञात-परोक्ष मात्र है और ज्ञात-अपरोक्ष केवल जीव का असत्य ही है, तब तक ये दोनों चैतन्य अपने आप में अपूर्ण, अतृप्त एवं परस्पर क्लेशकारी रहते हैं। दोनों के बीच गुरुतत्त्व के प्रकट होने पर जीव की असत्यता एवं ईश्वर की अज्ञातता उस प्रज्ञा आलोक में लुप्त हो जातीं हैं; ईश्वर और जीव का परस्पर समावेश अखंड ज्ञात सत्य के पूर्ण रूप में सिद्ध हो जाता है।

सदानन्दे चिदाकाशे मायामेघस्ताडिन्मनः ।
अहन्ता गर्जनं तत्र धारासारा हि वृत्तयः ।
महामोहान्धका रेऽस्मिन् देवो वर्षति लीलया ।
तस्या वृष्टेर्विरामाय प्रबोधैक समीरणः ॥

Samvit Sphulinga

YEAR – 2
ISSUE – 1

RAIN 1976

Obiesance

To that mysterious counter-move,

That great subterfuge,

A nameless love,

The Guru.

Greetings to all Samvit Sadhakas,
on the first anniversary of Samvit Sphulinga

Guru Poornima

On this day,
Master, lift this clay—
Fingering it with skill, from tip to tip,
Spreading the thrill from pore to pore—
Till I be a Poorna-Kumbha,
Consecrated by thine Word
And filled with thine Will;
And on the palm of thy tender Grace
Thine other hand shall place
The crowning fruit of fulness,
My Master, thine own fulness!

The Master

परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेद मायान् नास्त्यकृतः कृतेन ।
तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ।।

One aspiring for the Absolute Good must first examine the nature of all worldly achievements and attain intense dispassion by knowing that the eternal and deathless essence cannot be obtained by transient means. For the realisation of the former he must offer himself whole heartedly to the Guru, who is well versed in the Godly Word and established in the experience of it.

★

Nirveda takes you beyond the Vedas, the network of dos and don'ts, the realm of the triguna. It is not an emotion but a conviction, a deep awareness of the utter futility and positive harm of devoting oneself to the false and fleeting forms of life. It is not a sudden conviction also, but rather a slow evolution (क्रायात) achieved through the soul's sincere experimentations with life (परीक्षण).

Realisation of Self comes later. First, one must work a revolution of the soul and that is vairagya All values are changed. The direction of life-flow is reversed. Gone are the thousand streams of distraction tumbling down to states of embodiment. The only available course now is that which leads to the presence of the Guru, embodiment of Grace. It is there that the great miracle of विज्ञान is to take place. Indeed, विज्ञान is the dissolution of the whole world. No book however holy, no intellect however inspired, no deity however hoary, no other contrivance however cunning can achieve this. It is now the Guru and Guru alone (गुरुम् गच्छेत्).

★

The path that leads to the Guru is inward. It is mysterious and most exacting Only a soul heavily drunk with vairagyarasa can dare to rush into it and offer itself completely and once for all (अभिगच्छेत्). There is no more sharing with worldliness, not even looking back to it—the bridges are burnt behind.

★

Take this dry wood (समित्) and place it at his feet silently Lay yourself down inwardly—like that stick It is for the Master to pick, bend, break or burn it. Be glad to be

used thus, to be offered to and accepted by him. Out of it he will make the fire to manifest. You make yourself a good, dry fuel, for the fire called Guru.

The Door

[Meditations designed by sadhakas in vimarsha exercises]

Supreme Architect ! Thou hast built
This body with many doors
For me to flit in and out.
But the one that holds back Thy radiance
Thou hast sealed with my own heart.
So I searched and searched
And never found the key.

★

When the door opened and I entered
I found it was all the time wide open
The shutters had been only my eyelids—
How long I took to know !

★

Light condensed makes a wall—
And itself melts where love touches to knock.
I pass out of myself,
As you open into yourself !

★ ★ ★

You shall discuss the path no more than you walk it. And in walking you need no more to look this side and that than for the nearing of the goal than the deepening of your faith in it.

Let the Guru's light be your eyes and his commanding strength, your limbs. His love is your path and his being the goal. Surrender yourself to him.

Of the Ayana

The anniversary celebrations of Samvit Sadhanayana commenced with worship of Shri Somanatha in the Ashrama Shrine, on the morning of 15th May. Evening lectures were inaugurated by lighting the Samvit Deepa. For this occasion a Samvit sadhaka of Ahmedabad had designed, executed and embellished a special lamp, whose significance was explained by Shri Swamiji on the concluding day.

In the opening lecture the question was raised as to how Samvit realisation was to be attained and, in answer the three means mentioned in the Bhagavad Gita (4.39) were taken up for consideration respectively in the three evening sittings

Sadhakas participated in the after-noon "Vimarsha" sessions with very keen interest. In these, the exercises set-up with a view to induce Samvit ferment evoked such excellent response that it was proposed to deliver some of the Vimarsha-yield to *Sphulinga* readers too. We have made a beginning in this very issue.

Another interesting item of the annual Spanda was a symposium on "Relevance of yoga to me". Twelve persons from various cities and fields of life presented their approach to and application of yoga in a way that impressed all with their sincerity and spontaneity. Here, a sample from the bag-ful of ideas conveyed in the three-hour-long sitting :

i Health (स्वस्थता) is not mere preservation of the physical body (शरीर) but the awareness of the bodiless self (अशरीरो स्व) for which the living body should become a fit instrument. Yoga is the real way to real health.

ii Let us remember that yoga is more an enjoyable art of life than a theory to be understood, more an art than science.

iii Kalidasa says : "Everyone of you must give up the body by yoga"—which assumes that every body is begotten of yoga. Between this getting and giving up of the body, life must naturally be a flow of yoga. It consists in identification of "I" with "this."

iv Whatever may be the field in which you apply it, for whatever purpose, this much is certain—yoga will avoid accidents !

v It is an alertness all the twenty-four hours.

vi It has helped me to discover the value of life and the only power in my hands— the pure buddhi. The more I purify the latter through yoga, the greater, vaster and more independent become the realisable values of life.

vii The meaning derived from Shravana is to be transformed into one's own continuous awareness. Yoga does it.

The annual Spanda came to an end with a public meeting, Shri Durga Saptashati recitations and havana. Shri Swamiji's concluding remarks :

"Learn to make everything artistic and meaningful. It is not wilful imagination but the discovery of a heritage bequeathed to us by the Upanishadic Rishis They did not merely gaze at the world of things, in it they saw the signature of God. They thrilled to the sight of a parrot speaking, a cloud sailing, the unfailing glory of the coming of day. And they praised Him in immortal mantras.

Vasugupta read the message of Shiva on an immen rock on Mahadeva Peak. That was in the northern-most p of the country and that was some twelve hundred years bac Ramana saw Shiva Himself in the form of Arunachala an the hill took the uninitiated raw lad on its lap and taug him the deepest secrets of Vedanta. That was in the southern most province and that was right in our own days. Thes rocks and those days still exist. Indeed, every rock i India is an Arunachala, every summit a Mahadeva Peak each bit of this beloved soil has had some saint bloomin from it at some time or other.

Let us take heart and utilise this heritage, this unbro ken and natural Samvit tradition, with this intrinsic and ever-fresh approach. Let us break the barrier between Art and Science. Life is both and beyond. Not only should life be scientific, properly understood and explained, but also be artistic, beautifully expressed and enjoyed. In the divinity of the self alone can this unity be achieved. Let us strive here and now for it and be fulfilled."

★

Shri Swamiji conducts the chaturmasya - lectures at Nadiad (Gujarat) upto 8th September.

★ ★ ★

Celebrations for the Season

Mon	9.8.76	Shravani Rakshabandhana (after 4.40 p. m.)
Tue	17.8.76	Janmashtami (midnight)
Sat	28.8.76	Ganesha-jayanti (noon)
Sun	29.8.76	Rishi-Panchami
Tue	7.9.76	Ananta-chaturdashi